गीतिनाट्य एवं रंगमंचीय तत्वों का विश्लेषण: 'अंधा युग' के विशेष संदर्भ में

शाश्वती खुंटिआ*

saswatikhuntia1999@gmail.com

शोध सार-

संस्कृत एवं प्रारंभिक भारतीय साहित्य में गीतिनाट्य की उपस्थित प्रचुर मात्रा में विद्यमान रही है। नाटक को जब काव्यात्मक रूप से रचा जात है तब साहित्य के उक्त रूप को गीतिनाट्य के नाम से आख्यायित किया जाता है। गीतिनाट्य साधारणतः पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित होता है। जिसका उद्देश्य विषयाधारित एवं उपदेशात्मक होता है। गीतिनाट्य के मुख्यतः 3 तत्व माने जाते हैं- नाटकीयता, काव्यत्मकता और अभिनय। नाटक के अनुरूप गीतिनाट्य भी केवल पाठकों के लिए नहीं बल्कि दर्शकों के लिए सारभूत है। नाटक और रंगमंच आपस मे स्वत: जुड़े हुए हैं। नाटक की सार्थकता रंगमंच पर ही निर्भर करता है। गीतिनाट्य परंपरा में धर्मवीर भारती कृत 'अंधा युग' को एक कालजयी रचना की दर्जा दी गयी है। प्रस्तुत शोधपत्र में गीतिनाट्य के विशेषताओं को ध्यान में रखकर इसके रंगमंचीय तत्वों का सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है साथ ही धर्मवीर भारती कृत गीतिनाट्य 'अंधा युग' जिसको वे दृश्य काव्य में रूप में स्वीकार करते हैं की विस्तृत चर्चा की गयी है। प्रस्तुत शोधपत्र में गीतिनाट्य के विभिन्न तत्वों के समेत रंगमंच के मुख्य पहलूओं एवं गीतिनाट्य को मंचन करते समय आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है एवं गीतिनाट्य अंधा युग के रंगमंचीय विधान पर ध्यान आकर्षित किया गया है।

बीज शब्द: गीतिनाट्य, काव्यात्मकता, नाटकीयता, अभिनय, रंगमंचीयता मंचन, गेयता

गीतिनाट्य की अवधारणा एवं तत्व

गीतिनाट्य साहित्य के अन्य प्रारूपों से भिन्न है। नाटक का वह रूप जिसमें गेयता एवं मुक्तक छंदों की प्रधानता होती वह गीतिनाट्य के अंर्तगत आता है। अर्थात जब नाटक को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाए तब वह गीतिनाट्य कहलाता है। डॉ. दशरथ ओझा के अनुसार पुरातन युग से ही भारत वर्ष में गीतिनाट्य का स्वरूप विद्यमान है। वे कहते हैं- "जन-नाटक गीतों के आधार पर शताब्दियों से समाज में खेले जाते थे। उन्हीं की शैली पर नाटकों की रचना हुई जो रास, कीर्तनियां या अंकिता नाट के रूप में अब तक विद्यमान हैं।" (1983: 394)। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार प्रकृतवादी और यथार्थवादी नाटकों की प्रतिक्रिया एवं 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में सिनेमा के आगमन के फलस्वरूप गीतिनाट्य अधिक मात्रा में लिखा जाने लगा। परंतु कुछ नाटक में काव्य तत्व होते हुए भी गीतिनाट्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि गीतिनाट्य में पद्यात्मकता के साथ-साथ व्यैयक्तिक मूल्यों का भी उजागर किया जाता है। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- "गीतिनाट्य के लिये यही

* **शोधार्थी, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय**

पर्याप्त नहीं है कि उसका माध्यम गद्य न हो कर केवल पद्य हो। उसके लिये भावमयता की अनिवार्यता है। गीति-तत्त्व में भावना की प्रमुखता है। इसीलिये गीतिनाट्य में कार्य की अपेक्षा भाव का महत्व अधिक है"। (1947:102)। उदाहरण स्वरूप हम दिनकर कृत गीतिनाट्य 'उर्वशी' को देख सकते हैं जिसमें रचनाकार उर्वशी और पुरूरवा के प्रेम- प्रसंग दैहिक न होकर नैसर्गिक रूप धारण कर लेता है। गीतिनाट्य के परिभाषा को और अच्छे से समझने के लिए हम बच्चन सिंह के परिभाषा देख सकते हैं। यथा- "गीतिनाट्य मुख्यतः भावनामय होते हैं; उनमें बहिःसंघर्षों की अपेक्षा अन्तःसंघषों की प्रधानता होती है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जीवन की कठोर वास्तविकताओं से उनका कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ पाता"(1958:169)।

नाटक से गीतिनाट्य कई आधार पर भिन्न होता है जैसे कि पहला तो कथानक गेय प्रधान होता है। जबकि नाटक का कथानक गद्यात्मक होता है साथ ही कहीं- कहीं कविता का संक्षिप्त आयाम भी देखने को मिलता है। दूसरा नाटक का अभिप्राय सामाजिक, समस्या प्रधान आदि स्थूलकाय तत्वों से समावेश होता है जबकि गीतिनाट्य में व्यक्ति के अंतःकरण में उत्पन्न द्वंद्व के सूक्ष्मता को प्रकट किया जाता है। इस संदर्भ में डॉ. ओझा लिखते हैं- "गीति-नाट्य में बाहरी क्रियाशीलता और संघर्ष के स्थान पर मानसिक भावों का एक-दूसरे के साथ संघर्ष दिखाया जाता है(1983:394)। तथा वे कविता के प्रादुर्भाव को गीतिनाट्य में सर्वोपरि माना है।

प्रारंभिक समय में नाटक में पद्य- रूपक प्रचलित होने के बावजूद गीतिनाट्य को नवीनतम विधा का दर्जा दिया गया है। विभिन्न विद्वानों के अनुसार हिंदी साहित्य में जयशंकर प्रसाद कृत 'करूणालय'(1912) को हिंदी का प्रथम गीतिनाट्य माना गया है। प्रसाद के उपरांत मैथलीशरण गुप्त के 'अनघ', भगवती चरण वर्मा के 'तारा', उदयशंकर भट्ट के 'विश्वामित्र', 'मत्स्यगंधा', 'राधा', दुष्यंत कुमार के 'एक कंठ विष पायी', धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' आदि प्रमुख गीतिनाट्य श्रेणी में आते हैं।

उपर्युक्त सभी विद्वानों के अवधारणाओं की चर्चा करते हुए निष्कर्षत: गीतिनाट्य के निम्नलिखित तत्व प्राप्त होते हैं-

1. काव्यमय कथानक
2. चरित्र चित्रण
3. अभिव्यंजना
4. गेयता
5. भावात्मकता
6. अभिनेयता

भाषा प्रवीण धर्मवीर भारती भारत के स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी साहित्य जगत में स्वयं को उभरे साहित्यकार के रूप में दृढ़ता पूर्वक स्थापित किया। नई कविता के अनुपम लेखक डॉ. धर्मवीर भारती नवीनतम एवं आधुनिक विचारधारा को अपनाने के साथ ही अपनी पारंपरिक मूल्य बोधो से सम्पूर्ण रूप से अलग नहीं हुए थे तथा उनसे निविड़ रूप से जुड़े हुए थे। अपने अनोखे लेखन शैली में वे पारंपरिक संकल्पनाओं को अभिनव परिपाटी में संजोते थे। 'अंधा युग' गीति-नाट्य का कथा विन्यास द्वापर युग के महाभारत पर आधारित होने के बावजूद नए युग के मनुष्य के कुंठाग्रसित वैचारिक आयामों पर भी विस्तृत जानकारी देता है। इतिहास, पुराण आदि कथाओं को साहित्य में स्थान देते समय साहित्यकारों यह ध्यान में रखना होता है कि पौराणिक

एवं धार्मिक आख्यान लोगों के आस्था, संस्कृति एवं मान्यता से संलग्न होता है, जिसको पाठकों द्वारा सहर्ष स्वागत करवाना एवं पाठकों के रुचि से संतृप्त करना काफ़ी उथल-पुथल भरा कार्य हो सकता है।

मूल रचनाकार लिखते हैं- 'अन्धायुग' इनसे अलग युद्धोपरान्त मानसिकता का काव्य है, 'युद्धोपरान्त यह अन्धायुग अवतरित हुआ'- जिसमें विजय पाण्डवों की हुई, लेकिन सारा ढाँचा जो जीवन का था, नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय का वह समूचा ढाँचा क्षत-विक्षत हो चुका था-बच रहे थे सिर्फ़ सवाल"।(2006:708)

काव्यात्मक कथानक-

स्वयं भारती भूमिका में लिखते हैं कि- अंधा युग के कथानक/ घटना "महाभारत के अट्ठारहवें दिन से लेकर प्रभास- तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक"(2016) है। गीतिनाट्य को और रोचक तथा जीवंत बनाने के लिए पौराणिक घनावली के साथ- साथ कल्पित घटनाओं की भी सहायता ली गयी है। जैसे कि लेखक निर्देश में कहते हैं कि - "कृष्ण के वधकर्त्ता का नाम 'जरा' था, ऐसा भागवत में भी मिलता है, लेखक ने उसे वृद्ध याचक की प्रेत काया मान लिया है"। (2016)

उदाहरण-

"अब मैं वृद्ध व्याध हूँ/नाम मेरा जरा है वाण है /वह मेरे ही धनमृत्य/ जो मृत्यु बना कृष्ण की/ पहले मैं था वृद्ध ज्योतिषी /वध मेरा किया अश्वत्थामा ने"(2016:104)।

अंधा युग में कुल 5 अंक अंतराल एवं समापन हैं। यथा- **कौरव नगरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्धसत्य, पंख, पहिये और पट्टियाँ, गांधारी का शाप, विजय: एक क्रमिक आत्महत्या, प्रभु की मृत्यु।** लेखक स्थापना में मंगलाचरण, उद्घोषणा नर्तकों द्वारा नृत्य का प्रदर्शन के पश्चात ही पहला अंक के तरफ अग्रसर हुए हैं। प्रहरियों का हताशा भाव तथा व्यंग्योक्ति एवं वृद्ध याचक का भविष्य एवं प्रेतात्मा होकर प्रकट होना नाटक को और भी दिलचस्प बनाता है। तृतीय अंक में गांधारी का अभिशाप रचना के चरमोत्कर्षता को दर्शाता है। साथ ही साथ सभी पात्रों का संवाद काव्यात्मक है। अतः हम कह सकते हैं कि अंधा युग के कव्यात्मक कथानक गीतिनाट्य नाट्यकला के कसौटी पर खरा उतरता है।

चरित्र- चित्रण-

पात्र में अश्वत्थामा, गांधारी, युयुत्सु, धृतराष्ट्र, संजय, विदुर आदि प्रमुख हैं। गौण पात्रों में बलराम, युधिष्ठिर, प्रहरी, वृद्ध याचक हैं। प्रहरी, वृद्ध याचक गौण तथा कल्पित पात्र होते हुए भी अंत्यत प्रभावशाली हैं। साथ ही दर्शकों को गीतिनाट्य में बराबर संलग्न करने के लिए प्रयासरत हैं। लगभग सभी पात्र मनुष्य के वाह्य क्रियाकलाप के बजाय आंतरिक स्वरों का प्रतिनिधित्व करते हुए नजर आते हैं। अश्वत्थामा एक ऐसा पात्र है जो मनुष्य के क्रूर एवं प्रतिशोधी प्रवृत्ति को दर्शाता है। इस पात्र के संदर्भ में गीतिनाट्यकार लिखते हैं- "अश्वत्थामा न सम्पूर्ण सच की उपज है, न सम्पूर्ण झूठ की वह तो अर्द्धसत्य की उपज है"। (2006: 703)

अभिव्यंजना-

साहित्यकारों तथा कलाकारों का मन विभन्न भावों एवं चित्रों का संचयन- घर होता है। अतः उन भावों को वह कलात्मक रूप देकर शब्दबद्ध तथा चित्रबद्ध करते हैं, जिससे विभिन्न साहित्यिक विधाओं व कलात्मक संरचनाओं की उत्पत्ति होती हैं। साहित्यकार के मन में ऊपजे भाव, विचार आदि को शब्दों के

माध्यम के व्यक्त करने की प्रक्रिया अभिव्यंजना कहलाती है। "अभिव्यंजना काव्य-नाटक की वह शिल्प दृष्टि है जिसमें कवित्व और नाटकीयता के सामंजस्य को भावना और व्यापार के धरातल पर परखा जा सकता है"। डॉ. राजेश्वरी देवालिया (1997:88)।

अभिव्यंजना के मुख्यतः: 3 रूप हैं, बिंब, प्रतीक और अलंकार

बिंब को शब्दों की छाया मान सकते हैं। अंधा युग के बिंब विधान में हम पहले संवादों एवं शब्दों को देख सकते हैं यथा गीतिनाट्य में मुख्य पात्रों द्वारा अंधेरा, अंधेपन, शुन्य आदि शब्दों का प्रयोग जिसको हम ज्ञान का अभाव, असुरक्षित भावना, निरर्थक आदि अर्थ के सहित समझ सकते हैं।

अन्य एक उदाहरण-

नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति, कृष्णार्पण /यह सब हैं अन्धी प्रवृत्तियों की पोशाकें /जिनमें कटे कपड़ों की आँखें सिली रहती हैं। (2016:12)

अंधी प्रवृतियों की पोशाक के माध्यम से गांधारी युग के निराश जनक प्रवृत्तियों का उजागर कर रही है।

अन्य उदाहरण-

यह कटु निराशा की /उद्धत अनास्था है/ क्षमा करो प्रभु !(2016:13),

यहाँ गांधारी के श्रीकृष्ण प्रति वाक्य से दु:खी होकर विदुर सूक्ष्म भावों सुदंर शब्दों द्वारा शब्दबद्ध कर रहे हैं।

प्रतीक-योजना-

किसी विशाल वस्तु तथा जटिल भावों को जब कुछ सीमित अक्षर तथा चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाए तब वह प्रतीक विधान कहा जा सकता है। अंधा युग में प्रतीक- योजना का भरमार है। प्रथमतया हम इसके विषय- वस्तु को देख सकते हैं जहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध पर ध्यान केंद्रित करके पाठकों तथा दर्शकों के समझ पौराणिक विषय को ही स्थान दिया गया है। उदाहरण स्वरूप हम अंधा युग के संवाद योजन को देख सकते हैं।

"जैसे तेज वाण किसी/ कोमल मृणाल को /ऊपर से नीचे तक चीर जाये/ चरम त्रास के उस बेहद गहरे क्षण में/ कोई मेरी सारी अनुभूतियों को चीर गया" (2016:22)। संजय अपने मृत्यु के क्षण को याद करते हुए प्रतीकों का व्यवहार कर रहे हैं।

गेयता-

गेयता का संबंध साधारणतः लय, तुक एवं छंद आदि से है। अंधा युग का पूर्णतः मुक्तक छंद पर आधारित है। कुछ- कुछ पंक्ति गद्यात्मक होने का आभास होता है तथा तुकों से दूर वार्तालाप शैली के अधिक निकट है। कथागायन में लय- तुक का प्रयोग देखा जा सकता है। जैसे कि-

"जिस तरह बाढ़ के बाद उतरती गंगा /तट पर तज आती विकृति शव अधखाया / वैसे ही तट पर तज अश्वत्थामा को /इतिहासों ने खुद नया मोड़ अपनाया/वह छटी हुई आत्माओं की रात /यह भटकी हुई आत्माओं की रात /यह टूटी हुई आत्माओं की रात"। (2016:35)

संवादों में लयबद्ध तथा तुकों का प्रयोग अत्यंत कम है, यथा-

"झूठी थी सारी अनिवार्यता भविष्य की /केवल कर्म सत्य है /मानव जो करता है, इसी समय /उसी में निहित है भविष्य युग-युग तक का!"(2016: 30)

कुछ- कुछ संवादों में तुकों का समागम है। जैसे-

"झुक जाओ/ झुक जाओ/ढालों के नीचे /छिप जाओ /नरभक्षी हैं/वे गिद्ध भूखे हैं।(2016:06)

अभिनेयता-

अंधा युग नाटक को रंगमंचीय दृष्टि से ही लिखा गया है। लोक नाट्य के भांति मंगलाचरण, प्रभु के मृत्यु लिखने से पहले प्रभु की वंदना आदि रंगमंचीय पारदर्शिता को दर्शाता है। भारती जी ऐसे पात्रों की रचना किए हैं जो अभिनय के सभी अवयव को प्रदर्शित करते हैं। जैसे- प्रहरी दोनों चुप होकर मंच के आर- पार घुमते हैं। विदुर का चिंतातुर खड़े होना साथ ही कुछ क्षण महाराज के उत्तर की प्रतीक्षा करना आदि। कृतवर्मा पात्र का प्रवेश एक योद्धा बगल में रखे अस्त्र रख कर वस्त्र से मुंह ढाप कर सोने से प्रारंभ हुआ है। अन्य अभिनय अवयव में वन में सियारों का रोदन, पक्षीरूपी नर्तक शिशुओं का आगमन, पराजय के बाद दुर्योधन का क्षत-विक्षत अंगों का वर्णन आदि गीतिनाट्य के श्रेष्ठ अभिनय कला को दर्शाता है।

भावात्मकता-

जैसा कि पहले कहा गया है गीतिनाट्य में वाह्य क्रियाकलापों से मनुष्य के सूक्ष्मदर्शी भावनाओं का प्रकाश अधिक अपेक्षित है। इस संदर्भ में अंधा युग गीतिनाट्य संपूर्ण रूप से उपर्युक्त कसौटी पर खड़ा उतरता है। आधुनिक युग में प्रचलित मानसिक विसंगतियों को पौराणिक पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। अथवा हम यों कह सकते हैं कि मनुष्य में मानसिक कुरीतियां युग से प्रवाह हो रहा है।

इस गीतिनाट्य में धृतराष्ट्र की अपनी अंधेपन से उपजी असुरक्षित भावना, गांधारी का अपने सौ पुत्रों को हरा कर प्रभु के अस्तित्व के प्रति अनास्था, अश्वत्थामा का अर्धसत्य को सत्य मान कर अपने पिता को खोना एवं बाद में प्रतिशोध परायण होना, युयुत्सु का सत्य का साथ दे कर भी अपमान, भर्त्सना को सहना एवं अंत में आत्महत्या करना आदि समाज में निहित मानसिक भद्देपन पर प्रकाश डाल रहा है। वस्तुतः हम कह सकते हैं कि अंधा युग सटीक मायने में भावात्मक तत्व को आत्मसात करता है।

रंगमंच एवं उसके तत्व-

रंगमंच, रंग एवं मंच दो शब्दों के समिश्रण से बना है जहाँ रंग का आशय अभिनेता एवं नाटकीय वातावरण का विभिन्न कलाकारी व चित्रकारी के माध्यम से साज सजावट तथा मंच एक ऐसा स्थान हैं, जहाँ नाटक, नृत्य आदि प्रस्तुत किया जाता है। अत: जहाँ नाटक, नृत्य आदि का मंचन विभिन्न रंग तथा कलाकृति के समावेश में हो, उस स्थान को हम रंगमंच कहते हैं।

संस्कृत के समृद्ध साहित्य में नाटक विधा का महत्वपूर्ण स्थान है। भरतमुनि विधिवत रूप में नाटक विधा को कुछ निश्चित सूत्र में बांध दिया जो एक कालजयी रचना **'नाट्यशास्त्र'** के रूप में आज भी साहित्य क्षेत्र में प्रचलित है। उन नाटकों को दर्शकों के सामने खेला भी जाता था, जिसके चलते भारतीय रंगमंच का उद्भावन हुआ था। साधारणत: प्राचीन रंगमंच को दो हिस्से में बांटा गया है।

1. **लोकमंच**- जहाँ नाटक साधारण जनता के बीच प्रस्तुत किया जाता था । यथा रामलीला, यात्रा आदि

2. **संस्कृत रंगमंच**- यह राजा तथा संभ्रांतश्रेणी के लिए था जो रंगशाला में राजा एवं विशिष्ट वर्गों के बीच खेला जाता था।

जब नाटक, गीतिनाट्य आदि का मंचन होता है तब रंगमंच में विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक होता है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि रंगमंच के 3 प्रकार मानते हैं-

- **विकृष्ट (लंबाकार)** – यह आयताकार होता है।
- **चतुरस्त्र (चौकोर)** – यह वर्गाकार होता है।
- **त्रयस्त्र(त्रिकोण)** – यह त्रिभुजाकार होता है।

सामान्यतः रंगमंच के 3 भाग देखने को मिलता है-

- मंच का प्रथम भाग जहाँ पर सभी नाटक खेला जाता है एवं मंच पर मौजूद सभी वस्तुओं को दर्शक देख सकते हैं उसे **रंगपीठ** कहा जाता है।
- मंच का पिछला हिस्सा जहाँ नेपथ्य के सहित अभिनेताओं के प्रवेश के लिए 2 द्वार होते हैं, उसको **रंगशीर्ष** कहा जाता है।
- **नेपथ्य** वह हिस्सा होता है जहाँ उद्घोषणा आदि की जाती है एवं वह दर्शकों को दृश्यमान नहीं होते हैं।

जैसा कि ज्ञात है रंगमंच के 4 अवयवों में से नाट्यकला और अभिनेयता की विस्तृत चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं।

अन्य दो अवयवों की चर्चा निम्नलिखित है-

प्रस्तुतीकरण-

भारती जी रंगमंच के सार्थकता को उजागर करने के लिए मामा वरेरकर के वाणी को उद्धृत करते हैं- "भाई, जब तक हिन्दी नाटक खेले नहीं जाते तब तक अच्छे नाटक लिखे कैसे जाएंगे"। (2006: 713) वस्तुतः लेखक यह स्वीकार करते हैं कि- " मूलतः यह काव्य रंगमंच को दृष्टि में रख कर लिखा गया था"।(2016) लेखक मंच एवं नेपथ्य के साज-सजा एवं रंग परिपाटी का विशेष ध्यान रखे हैं। जैसे मंच के पीछले भाग में एक स्थायी पर्दा एवं सामने भाग में दो पर्दा का होना अनिवार्य है, साथ ही सबसे आगे का पर्दा अंक के प्रारंभ से अंत उठा होने का मांग करता है। तथा बीच का पर्दा उठता एवं गिरता रहता है।

मंच के आलोक- सजा पर सबसे ज्यादा सतर्क बरतने की आवश्यकता है। कथा- गायक का दो होना आवश्यक है, जो मंच पर न हो कर नेपथ्य में सभी जानकारी आदि देते हैं।

संवाद योजना में बिलकुल गद्य अथवा पद्य के तरह न गाते हुए बीच के स्थिति को अपनाने की गुंजाइश है। लेखक निर्देशक को अपने कल्पनाशीलता के आधार पर गीतिनाट्य को प्रतीकात्मक बनाने की रियायती प्रदान किए हैं।

दर्शक-

फ़ीरोज़शाह कोटला, दिल्ली में इब्राहिम अल्काजी के निर्देशन में पहली बार यह गीतिनाट्य का मंचन हुआ था। सत्यजीत दूबे के निदेशना में बंबई में यह नाटक का मंचन हुआ। इस गीतिनाट्य लोकप्रियता दर्शनीय है। "कहा जाता है कि लगभग इतने ही सौ दर्शकों ने उसे देखा। इसका अर्थ है प्रति प्रदर्शन कोई एक सौ दर्शक।

इससे ज़्यादा दर्शक उस छत पर आ भी नहीं सकते थे। यह भी कल्पना की जा सकती है कि दर्शकों और कलाकारों के बीच कितने निकट का तादात्म्य स्थापित हो जाता होगा" (2006: 541)। 1992 में रामगोपाल बजाज के सार्थक निर्देशन में अंधा युग का पुनः मंचन हुआ था। इसके अतिरिक्त अरविंद गौड़, एम. के. रैना तथा अन्य भाषाओं के निर्देशन में अंधा युग का सफल मंचन हुआ है।

निष्कर्ष

अंधा युग अपने स्वरूप में विशिष्ट कृति है जो अतीत का कथ्य लेकर वर्तमान युग में प्रासंगिक है। बहुआकांक्षी वैश्विक जगत में इसकी प्रासंगिक भविष्य में भी बनी रहेगी है। समाज में उपस्थित वैमनस्यता तथा कुंठा का अबाध प्रचलन निरंतर पतित होते मानवीय मूल्यों संरक्षण प्रदान करने वाली यह कृति हिंदी साहित्य की अमूल्यनिधि है। डॉ. धर्मवीर भारती अपने युगीन प्रवृतियों के समानांतर सूक्ष्म मानवीय विचार धारणाओं से एवं परिवर्तित मूल्यबोधों के अनुरूप अपनी लेखनी चलाते हैं। अंध युग की काव्यात्मक भाषा तथा रचना की प्रतीकात्मकता मिलकर कृति को हिंदी साहित्य की कालजयी कृति बनाते हैं। अंधा युग के माध्यम से धर्मवीर भारती ने आधुनिक मानव में जन्मे अनास्था तथा विसंगतियों के ऊपर गहनतापूर्वक अवलोकन किए हैं। इस अवलोकन में उनकी नाटकीय प्रतिभा के साथ ही समसामयिक विषयों पर उनकी पैनी दृष्टि का भी देखने को मिलती है। यहां हमने गीतिनाट्य के अवयवों के आधार पर अंधा युग का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्मवीर भारती कृत अंधा युग, गीतिनाट्य के तत्वों एवं रंगमंचीय अवयवों पर तर्कसम्मत प्रतिष्ठित होता है।

संदर्भ :-

1. भारती, धर्मवीर. (2016). *अंधा युग*. प्रयागराज: किताब महल
2. देवालिया, डॉ. राजेश्वरी. (1997). *काव्य नाटकों का अभिव्यंजना शिल्प*. प्रयागराज: साहित्य संगम
3. मोहन, डॉ. नरेंद्र. (2009). *समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच*. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन
4. कुमार, डॉ. अशोक. (2009). *स्वातंत्र्योत्तर काव्य नाटक*. नयी दिल्ली : संजय प्रकाशन
5. जैन, नैमिचंद्र. (2008). *रंगदर्शन*. नयी दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन
6. भारती, पुष्पा. (2006). *धर्मवीर भारती की साहित्य साधना*. नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ
7. ओझा, दशरथ.(1983). *हिंदी नाटक उद्भव और विकास*. नयी दिल्ली: राजपाल एन्ड सन्स
8. डॉ. नगेन्द्र. (1947). *आधुनिक हिंदी नाटक*. आग्रा: साहित्य प्रेस
9. सिंह, बच्चन. (1958). *हिंदी नाटक*. प्रयागराज: हिंदी साहित्य प्रेस